बोध कथाएं

यशपाल जैन



बोध कथाएं

यशपाल जैन

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

श्रावण 1914 (अगस्त 1992)

मूल्य : 16 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : 3313308
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038 दूरभाष : 2610081
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 दूरभाष : 286696
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736 अन्नासलै, मद्रास-600002 दूरभाष : 867643
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 दूरभाष : 653823
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001 दूरभाष : 68650
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019 दूरभाष : 245785
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004 दूरभाष : 236393

तारा आर्ट प्रेस, बी-4, बहादुर शाह जफर मार्ग, हंस भवन, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्रकाशकीय

प्राचीन काल से ही हमारे देश में छोटी-छोटी कथाओं के माध्यम से किसी शिक्षा या उपदेश को लोगों तक पहुंचाने की परम्परा रही है। हमारा प्राचीन साहित्य ऐसी बोध कथाओं से भरा पड़ा है। वैसे उपदेश बड़े नीरस और उबाऊ होते हैं पर कथा द्वारा उन्हें सरल, सुबोध और रोचक ढंग से पाठक के मन में बिठाना आसान हो जाता है। बोध कथाएं जन-कल्याण की बात समाज तक पहुंचाने का बड़ा सशक्त माध्यम रही हैं।

इस पुस्तक में लेखक ने कुछ ऐसी बोध कथाओं को प्रस्तुत किया है जो बच्चों को न केवल पसंद आएंगी बल्कि उन्हें प्रेरित भी करेंगी। आशा है हमारा प्रयास सफल होगा और हमारे कल के नागरिकों के लिए पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

डा. श्याम सिंह शशि
निदेशक

भूमिका

मुझे हर्ष है कि भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा मेरी कुछ चुनी हुई लघु कथाओं का यह संग्रह प्रकाशित हो रहा है। इन कथाओं के विषय में मेरा कुछ कहना आवश्यक नहीं है। अपनी बात ये कथाएं स्वयं कहती हैं। फिर भी मैं दो-एक बातों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं।

पहली बात तो यह है कि इन कथाओं का किसी भी धर्म,विश्वास अथवा जात-पांत से कोई संबंध नहीं है। उनका पटल व्यापक है। उनमें अच्छा मनुष्य बनने की प्रेरणा है। ये उन भावनाओं को बढ़ावा देती हैं, जो इंसान को इंसान से जोड़ती हैं और उनके बीच प्रेम तथा आत्मीयता का रिश्ता विकसित करती हैं।

दूसरी बात यह है कि इनके पढ़ने में अधिक समय नहीं लगता, लेकिन प्रत्येक कथा को पढ़ने के बाद पाठक को उन मूल्यों के विषय में सोचने को विवश होना पड़ता है, जो मानव-जीवन की बुनियाद हैं। कहा जा सकता है कि ये कथाएं जाने-अनजाने उस एकता को साधित करती हैं, जिसकी आज बड़ी आवश्यकता है।

लघु कथाओं का चलन नया नहीं है। वे युगों से चली आ रही हैं, आगे भी चलती रहेंगी। वास्तव में ये कथाएं उन बातों को आसानी से कह देती हैं, जिन्हें बड़े-बड़े पोथे भी नहीं कह पाते।

ये कथाएं सबके काम की हैं। जो भी इन्हें पढ़ेंगे, उन्हें लाभ ही होगा।

— यशपाल जैन

सस्ता साहित्य मंडल,
एन-77, कनाट सर्कस,
नई दिल्ली

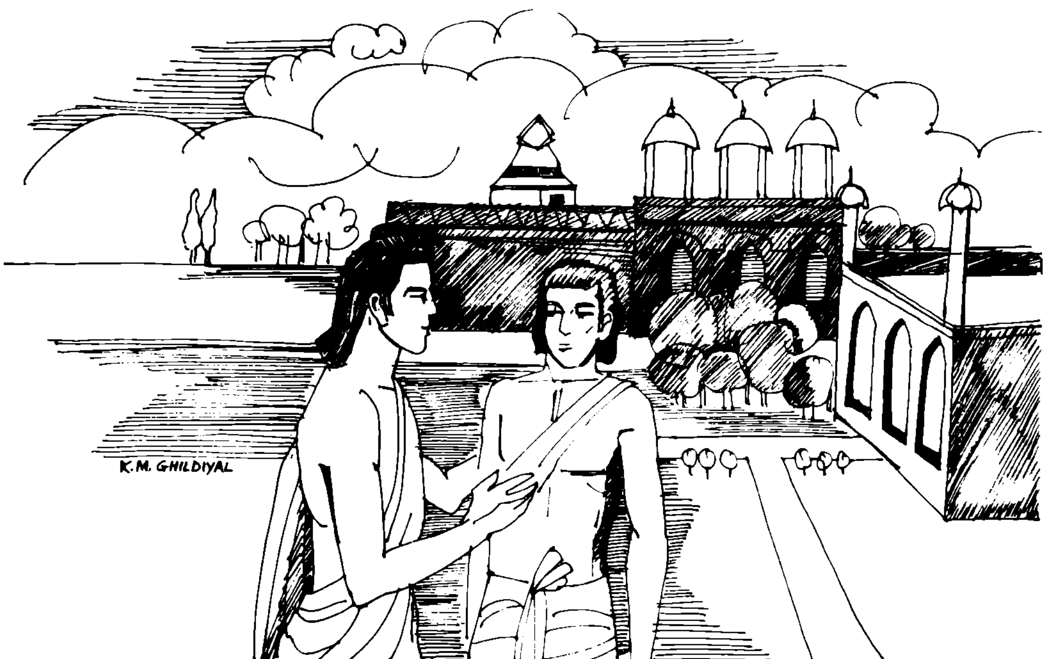
विषय-सूची

जन्म-भूमि की सुगंध

वाल्मीकि रामायण में एक बड़ा ही उद्बोधक प्रसंग आता है। रावण के वध और लंका-विजय के बाद राम ने लक्ष्मण से कहा, ''लक्ष्मण, तुम जाओ और विभीषण का विधिपूर्वक राज-तिलक कराकर लौट आओ।''

राम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण गए। उस नगरी की शोभा और गरिमा को देखकर वह मुग्ध हो गए। हरे-भरे वृक्षों, लताओं के पुष्पों से आच्छादित बाग-बगीचे, पक्षियों का कलरव, ऊंचे-ऊंचे सुंदर भवन, कलकल निनाद करते प्रपात, एक-से-एक बढ़कर चीजें! उनकी आंखें सुंदरता पर रीझ गईं।

लक्ष्मण ने विभीषण को गद्दी पर बिठाया और फिर लौटकर राम के पास आए। विनीत स्वर में बोले, ''महाराज, लंका ने मेरा मन चुरा लिया है। वह नगरी स्वर्ग जैसी है। आपकी आज्ञा हो, तो मैं वहीं रह जाऊं।''

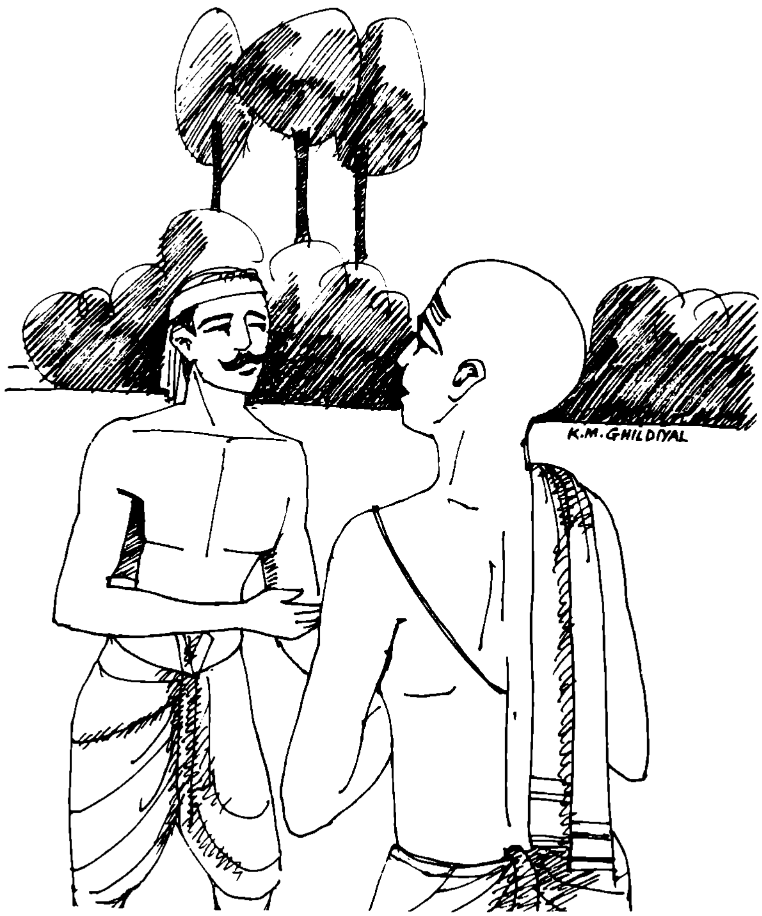


राम ने उनकी बात सुनी। फिर गंभीर होकर बोले, "लक्ष्मण, इसमें कोई संदेह नहीं कि लंका का सौंदर्य निराला है। वह सचमुच स्वर्ग नगरी है। उसमें चारों ओर समृद्धि है। प्राकृतिक सुषमा है। लेकिन लक्ष्मण, याद रखो, लंका कितनी भी सुंदर हो, समृद्ध हो और वैभव से पूर्ण हो, लेकिन वह अयोध्या की बराबरी नहीं कर सकती। हमारी अयोध्या तो तीनों लोकों से बढ़कर है। जहां आदमी जन्म लेता है, वहां की मिट्टी की सुगंध ही कुछ और होती है।"

इतना सुनते ही लक्ष्मण की आंखों पर से मायाजाल हट गया और उन्होंने देखा कि जो बात अयोध्या में है, वह लंका में नहीं है।

क्रोध चांडाल होता है

एक पंडितजी महाराज क्रोध न करने पर उपदेश दे रहे थे। कह रहे थे, ''क्रोध आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन है। उसमें आदमी की बुद्धि नष्ट हो जाती है। जिस आदमी में बुद्धि नहीं रहती, वह पशु बन जाता है।''



लोग बड़ी श्रद्धा से पंडितजी का उपदेश सुन रहे थे। पंडितजी ने कहा, ''क्रोध चांडाल होता है। उससे हमेशा बचकर रहो।''

भीड़ में एक ओर को एक जमादार बैठा था, जिसे पंडितजी प्रायः सड़क पर झाड़ू लगाते देखा करते थे। अपना उपदेश समाप्त करके जब पंडितजी जाने लगे तो जमादार भी हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

लोगों की भक्ति-भावना से फूले हुए पंडितजी भीड़ के बीच में से आगे आ रहे थे। इतने में पीछे से भीड़ का रेला आया और पंडितजी गिरते-गिरते बचे। धक्के में वह जमादार से छू गए। फिर क्या था। उनका पारा चढ़ गया। बोले, "दुष्ट! तू यहां कहां से आ मरा!मैं भोजन करने जा रहा था। तूने छूकर मुझे गंदा कर दिया। अब मुझे स्नान करना पड़ेगा।"

उन्होंने जमादार को जी भरकर गालियां दीं। असल में उनको बड़े जोर की भूख लगी थी और वह जल्दी-से-जल्दी यजमान के घर पहुंच जाना चाहते थे। पास ही में गंगा नदी थी। लाचार होकर पंडितजी उस ओर तेजी से लपके।

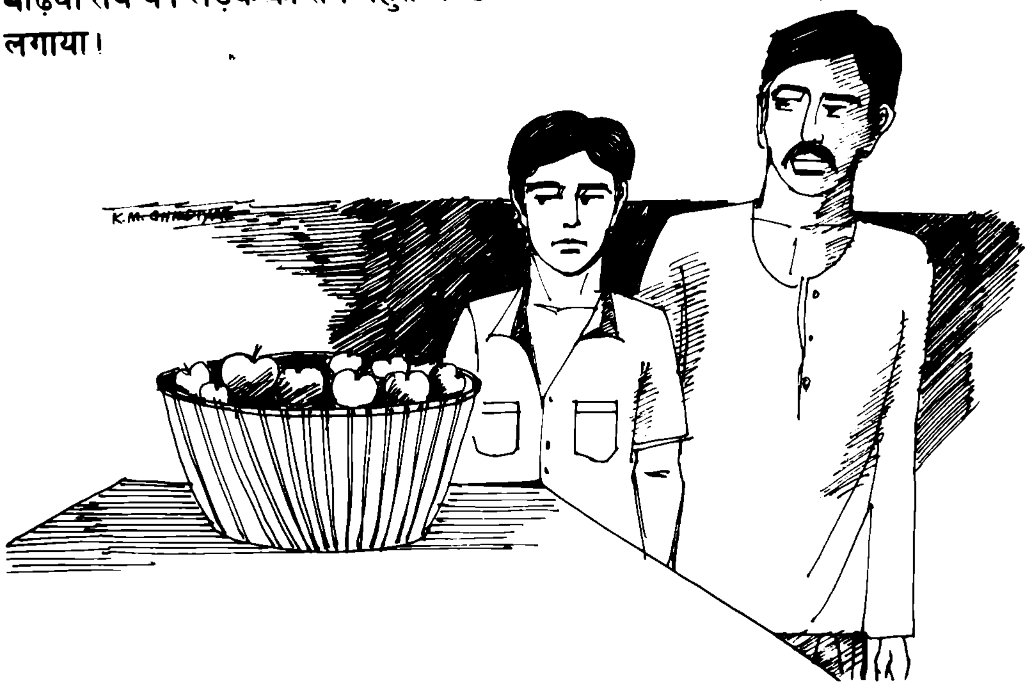
तभी देखते क्या हैं कि जमादार उनसे आगे-आगे चला जा रहा था। पंडितजी ने कड़क कर पूछा, "क्यों रे जमादार के बच्चे!तू कहां जा रहा है?"

जमादार ने जवाब दिया, "नदी में नहाने। अभी आपने कहा था न कि क्रोध चांडाल होता है। मैं उस चांडाल को छू गया। इसलिए मुझे नहाना पड़ेगा।"

पंडितजी को जैसे काठ मार गया। वह आगे एक भी शब्द न कह सके और जमादार का मुंह ताकते रह गए।

लड़के की समझदारी

एक लड़का था। वह बड़ा सच्चा और ईमानदार था। एक दिन वह एक पड़ोसी के घर गया। पड़ोसी कहीं गया था। उसके यहां एक टोकरी में बहुत-से सेव रखे थे। बड़े बढ़िया सेव थे। लड़के को सेव बहुत अच्छे लगते थे। लेकिन उसने उनको हाथ तक नहीं लगाया।



पड़ोसी लौटा तो देखा, सारे सेव ज्यों-के-त्यों रखे हैं। उसने लड़के से पूछा, ''क्यों, तुम्हें सेव पसंद नहीं हैं क्या?''

लड़के ने कहा, ''मुझे सेव बेहद पसंद है।''

पड़ोसी आश्चर्यचकित होकर बोला, ''तो तुमने लिए क्यों नहीं?''

लड़के ने कहा, ''कैसे ले सकता था?''

पड़ोसी बोला, ''क्यों, इसमें क्या बात थी? कोई देखने वाला तो था नहीं!''

''इससे क्या हुआ!'' लड़के ने कहा, ''कोई दूसरा देखने वाला हो या न हो, मैं तो देख रहा था। मैं अपने को बेईमानी करते देखना हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकता था।''

पड़ोसी इस बात को सुनकर गद्‌गद् हो गया। उसने कहा, ''तुम ठीक कहते हो। आत्मा सबमें है और वह हमारे भले-बुरे, सब कामों को देखती है।''

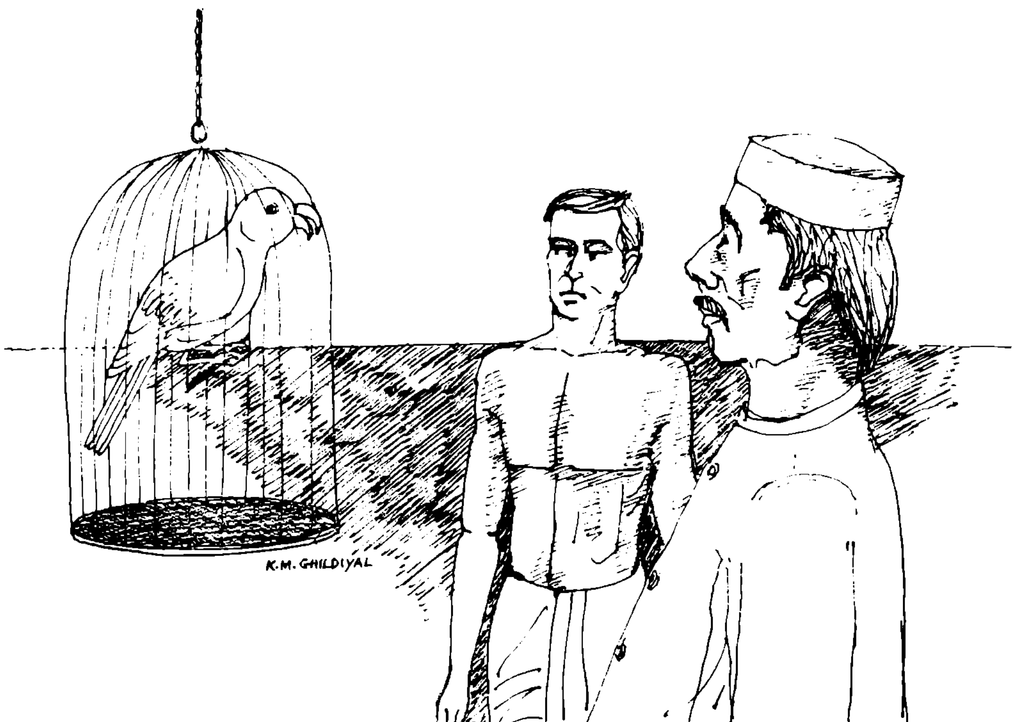
संगत का फल

एक दिन बाजार में एक आदमी दो तोते बेचने के लिए लाया। वे अलग-अलग पिंजरों में बंद थे। उनमें से एक का मूल्य पांच सौ रुपये था, दूसरे का पांच पैसे।

थोड़ी देर बाद एक सेठ वहां आया। उसने दोनों तोते देखे। मूल्य पूछा। मूल्य में इतना अंतर देखकर उसने कहा, ''ऐसा क्यों है?''

आदमी बोला, ''यह आपको अपने आप पता चल जायगा। लेकिन मेरी शर्त है कि जो कोई खरीदेगा, वह इन दोनों को एक साथ खरीदेगा।''

सेठ दोनों तोते खरीदकर घर ले गया। रात को सोते समय उसने पांच सौ रुपये वाले तोते को अपने पलंग के पास रखवा दिया। सवेरा हुआ तो तोते ने कहा, ''राम राम।''



और, उसने एक छोटा-सा बड़ा प्यारा भजन सुनाया।

अगले दिन सेठ ने दूसरे पिंजरे को अपने पास रखवाया। जब वह सवेरे उठा तो तोते ने गंदी-गंदी गालियां देना शुरू किया। सेठ को बहुत गुस्सा आया। उसने नौकर से कहा, ''इस तोते को मार डालो।''

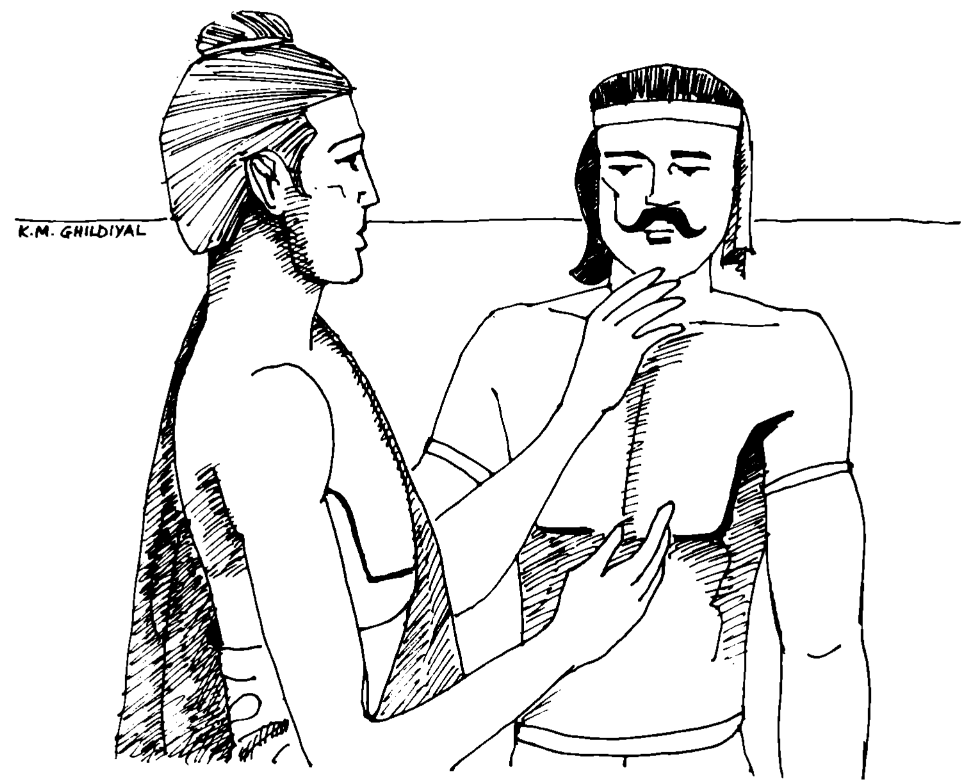
तभी बराबर के कमरे से दूसरा तोता बोला, ''इसे मारो मत। इसमें इसका कसूर नहीं है। यह मेरा सगा भाई है। हम दोनों एक साथ जाल में पकड़े गए थे। मुझे एक संत ने ले लिया और इसे एक मलेच्छ ने। संत ने मुझे भजन सिखाए। मलेच्छ ने इसे गालियां सिखाईं। यह संगत का फल है।''

तोड़ो नहीं, जोड़ो

अंगुलिमाल नाम का एक बहुत बड़ा डाकू था। वह लोगों को मारकर उनकी उंगलियां काट लेता था और उनकी माला पहनता था। इसी से उसका यह नाम पड़ा था। आदमियों को लूट लेना, उनकी जान ले लेना, उसके बाएं हाथ का खेल था। लोग उससे डरते थे। उसका नाम सुनते ही उनके प्राण सूख जाते थे।

संयोग से एक बार भगवान बुद्ध उपदेश देते हुए उधर आ निकले। लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि वह वहां से चले जाएं। अंगुलिमाल ऐसा डाकू है, जो किसी के भी आगे नहीं झुकता।

बुद्ध ने लोगों की बात सुनी, पर उन्होंने अपना इरादा नहीं बदला। वह बेधड़क घूमने लगे।



जब अंगुलिमाल को इसका पता चला तो वह झुंझलाकर बुद्ध के पास आया। वह उन्हें मार डालना चाहता था, लेकिन जब उसने बुद्ध को मुस्कराकर प्यार से उसका स्वागत करते देखा तो उसका पत्थर का दिल कुछ मुलायम हो गया।

बुद्ध ने उससे कहा, ''क्यों भाई, सामने के पेड़ से चार पत्ते तोड़ लाओगे?''

अंगुलिमाल के लिए यह क्या मुश्किल था। वह दौड़कर गया और जरा-सी देर में पत्ते तोड़कर ले आया।

बुद्ध ने कहा, ''अब एक काम और करो। जहां से इन पत्तों को तोड़कर लाए हो, वहीं इन्हें लगा आओ।''

अंगुलिमाल बोला, ''यह कैसे हो सकता है?''

बुद्ध ने कहा, ''भैया!जब तुम जानते हो कि टूटा जुड़ता नहीं, तो फिर तोड़ने का काम क्यों करते हो?''

इतना सुनते ही अंगुलिमाल को बोध हो गया और वह उस दिन से अपना धंधा छोड़कर बुद्ध की शरण में आ गया।

महान त्याग

उर्दू की किसी पाठ्यपुस्तक में गांधीजी ने एक कहानी पढ़ी थी। पैगम्बर साहब के निधन के कुछ ही साल बाद की बात है। अरबों और रूसियों के बीच बड़े जोर की लड़ाई हुई। दोनों ओर के बहुत-से योद्धा मारे गये। बहुत-से घायल हुए। लड़ाई का नियम था कि शाम होने पर वह बंद कर दी जाती थी। तब दोनों दलों के लोग अपने उन मित्रों और साथियों की खोज-ख़बर लेने के लिए आपस में मिलते थे, जो दूसरे पक्ष की ओर से लड़ रहे होते थे।

एक दिन जब शाम को लड़ाई बंद हुई तो अरब सेना का एक जवान अपने चचेरे भाई को देखने निकला। वह दूसरी ओर से लड़ रहा था। उसकी इच्छा थी कि अगर भाई को चोट आई हो तो उसकी दवा करे। अगर वह मर गया हो तो उसकी लाश को दफना दे। अचानक उसे यह भी विचार आया कि संभव है, भाई को प्यास लगी हो और वह पानी के लिए तड़प रहा हो। सो, उसने एक लोटा पानी भी साथ ले लिया।



एक हाथ में लालटेन और दूसरे में पानी का लोटा लेकर वह लड़ाई के मैदान में पहुंचा। वहां देखता क्या है कि सारा मैदान लोगों से अटा पड़ा है। उनमें से कुछ दुनिया से विदा ले चुके थे, कुछ के बदन में घाव हो गए थे। और वे दर्द के मारे चीख रहे थे। भारी दिल से अरब उनके बीच घूम-घूमकर अपने भाई को खोजने लगा। थोड़ी देर में उसे वह मिल गया। उसके शरीर में गहरे जख्म हो गए थे, जिनसे खून बह रहा था। उसे बड़ी प्यास लगी थी और वह कराहता हुआ पानी की रट लगा रहा था। उसके बचने की आशा नहीं थी।

अरब ने लालटेन नीचे रख दी और लोटे को दोनों हाथों से पकड़ कर जैसे ही उसे पानी पिलाने को हुआ कि इतने में किसी दूसरे घायल सिपाही की पुकार सुनाई दी– "पानी!" भाई ने जैसे-तैसे टूटी आवाज में कहा, "पहले उस घायल को पानी पिलाओ, फिर मुझे।"

इतना कहकर उसने अपना खुला हुआ मुंह बंद कर लिया।

अरब लोटा लेकर उस ओर बढ़ा, जिधर से वह आवाज आ रही थी। पास जाकर देखता क्या है कि वह बहुत बड़ा सरदार है। अरब उसे पानी पिलाने को झुका कि तभी तीसरी ओर से आवाज आई– "पानी!"

सरदार बहुत ही ज्यादा घायल हो गया था। पूरे शब्द भी उसके मुंह से नहीं निकल पाते थे। फिर भी उसने कठिनाई से कुछ बोलकर और कुछ इशारे से उस अरब को समझाया कि जबतक उस प्यासे को पानी नहीं मिलेगा, मैं पानी नहीं पीऊंगा।

बेचारा अरब बड़ी परेशानी में पड़ा। वह क्या करे! उसने सरदार पर एक निगाह डाली। उसकी आंखें चमक रही थीं। खोने के लिए समय न था। अरब पानी के लिए तड़पती आवाज को लक्ष्य करके तेजी से बढ़ा। उसका दिल बड़े जोर से धड़क रहा था और वह मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था।

ज्योंही वह घायल सिपाही के पास पहुंचा और उसे पानी पिलाने को हुआ कि उसने सदा के लिए अपनी आंखें मूंद लीं।

अरब तब दौड़ा-दौड़ा सरदार के पास आया। उसके दुख का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि सरदार की भी जीवनलीला समाप्त हो चुकी थी।

दुख भरे दिल से खुदा की बंदगी करता हुआ वह अपने भाई के पास गया। वह भी हमेशा के लिए मौत की गोद में सो गया था।

इस कहानी का उल्लेख करते हुए गांधीजी लिखते हैं:

"यों तीन घायलों में से किसी ने भी पानी न पाया, पर पहले दो मानवता के इतिहास में अपना नाम अमर करके चले गए।"

आगे फिर वह कहते हैं, ''मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पानी की परीक्षा से कठिन परीक्षा हवा की है। हवा के बिना तो आदमी एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। इसी से सारा जगत हवा से घिरा हुआ जान पड़ता है। फिर भी कभी-कभी ऐसा भी समय आता है, जब अलमारी जैसी कोठरी के अंदर बहुत-से आदमी ठूंस दिए हों और एक ही सूराख से थोड़ी-सी हवा आ रही हो, उसे जो पा सके, वही जिए, बाकी लोग दम घुटकर मर जाएं। हम भगवान से प्रार्थना करें कि ऐसा समय आए तो हम हवा को जाने दें।

''हवा के बाद दूसरे नम्बर पर पानी की आवश्यकता पड़ती है। पानी के प्याले के लिए मनुष्यों के एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने की बात सुनने में आती है। हम इच्छा करें कि ऐसे अवसर पर उन बहादुर अरबों का त्याग हममें आवे।''

अंत में वह लिखते हैं, ''पर ऐसी अग्निपरीक्षा तो किसी एक की ही होती है। सामान्य परीक्षा हम सबकी रोज हुआ करती है। हम सबको अपने आप से पूछना चाहिए– जब-जब ऐसा अवसर आता है, क्या हम अपने साथियों, पड़ोसियों को आगे करके स्वयं पीछे रहते हैं? यदि नहीं रहते, तो हम नापाक हुए, अहिंसा का पहला पाठ हमें नहीं आता।''

पसीने की कमाई का आनंद

रैदास नाम के एक बड़े भगवद् भक्त थे। वह काशी में रहते थे। गंगा के घाट पर ही उनकी झोपड़ी थी, जिसमें वह अपनी पत्नी के साथ रहते थे और झोपड़ी के बाहर बैठकर जूते गांठते रहते थे। अपनी मेहनत-मजूरी से जो मिल जाता, उसी में संतोष करते और मस्ती का जीवन बिताते। काम से समय मिलता तो सत्संग में चले जाते। कमाई बड़ी कम थी, पर इसकी उन्हें चिन्ता न थी। उनकी स्त्री बड़ी भली थी। पति को जो भी मिलता, उसी में खुशी-खुशी गुजर-बसर कर लेती।



एक दिन एक साधु रैदास के पास आया। उनकी दीनदशा देखकर उसने अपनी झोली में से एक पत्थर निकाला। बोला, "रैदास, लो, यह पारस पत्थर है। लोहे को सोना बना देता है।"

इतना कहकर साधु ने लोहे का एक टुकड़ा लिया और सोना बनाकर दिखा दिया।

रैदास ने कहा, ''महाराज, आप अपनी इस नियामत को अपने पास ही रहने दीजिए। यह मुझे नहीं चाहिए। मैं किसी की दी हुई मदद नहीं लेता। अपनी मेहनत से जितना कमा लेता हूं, उसी में अपनी घर-गृहस्थी चला लेता हूं।''

साधु ने बड़ी ममता से कहा, ''रैदास, आदमी को अच्छी तरह से रहना चाहिए। देखो तो, तुम्हारा कुटिया की क्या हालत हो रही है।''

रैदास बोले, ''स्वामीजी, हमें अपनी इस जिन्दगी से बड़ा सुख-संतोष है। पसीने की कमाई का अपना आंनद होता है। वही असली बात है।''

साधु ने बहुत आग्रह किया, पर रैदास नहीं माने। उन्होंने कहा, ''स्वामीजी, आपको यह पारस किसी को देना ही है तो राजा को दीजिए। वह बड़ा गरीब है। उसे हर घड़ी रुपये की जरूरत रहती है। या फिर दीजिए गरीब मन वाले उस धनी को, जो रात-दिन पैसे के पीछे पड़ा रहता है।''

रैदास ने आगे और बात नहीं की। वह जूते गांठने में लग गए। बेचारा साधु अपना-सा मुंह लेकर चला गया।

सबसे बड़ा धर्म

एक राजा था। उसके चार लड़के थे। एक दिन राजा ने उन्हें बुलाकर कहा, ''जाओ, किसी धर्मात्मा को खोज लाओ। जो सबसे बड़े धर्मात्मा को लावेगा, उसी को गद्दी पर बिठा दूंगा।''

चारों लड़के चले गए।

कुछ दिन बाद बड़ा लड़का लौटा। वह अपने साथ एक सेठ को लाया था। उसने राजा से कहा, ''यह सेठजी खूब दान-पूजा करते हैं। इन्होंने मंदिर बनवाए हैं, तालाब खुदवाए हैं, प्याऊ लगवाई है और साधु-संतों को भोजन कराते हैं।''

राजा ने उनका सत्कार किया और वह चले गए।

इसके बाद दूसरा लड़का एक दुबले-पतले ब्राह्मण को लाया। बोला, ''इन्होंने चारों धामों और सातों पुरियों की पैदल यात्रा की है। व्रत करते हैं और झूठ नहीं बोलते।''



राजा ने उन्हें दक्षिणा देकर विदा किया।

फिर तीसरा लड़का साधु को लेकर आया। आते ही साधु ने आसन लगाया और आंखें बंद करके ध्यान करने लगे। लड़के ने कहा, ''यह बड़े तपस्वी हैं। सात दिन में एक बार खाते हैं, और वह भी दूब, गर्मी में पंचाग्नि तापते हैं, जाड़ों में शीतल जल में खड़े होते हैं।''

राजा ने उनका स्वागत किया और वह प्रस्थान कर गए।

अब बारी थी चौथे लड़के की। वह अपने साथ मैले-कुचैले कपड़े पहने एक देहाती को लाया। बोला, ''यह एक कुत्ते के घाव धो रहे थे। मैं इन्हें जानता नहीं। आप ही पूछ लीजिए कि यह धर्मात्मा हैं या नहीं।''

राजा ने पूछा, ''क्या तुम धरम-करम करते हो?''

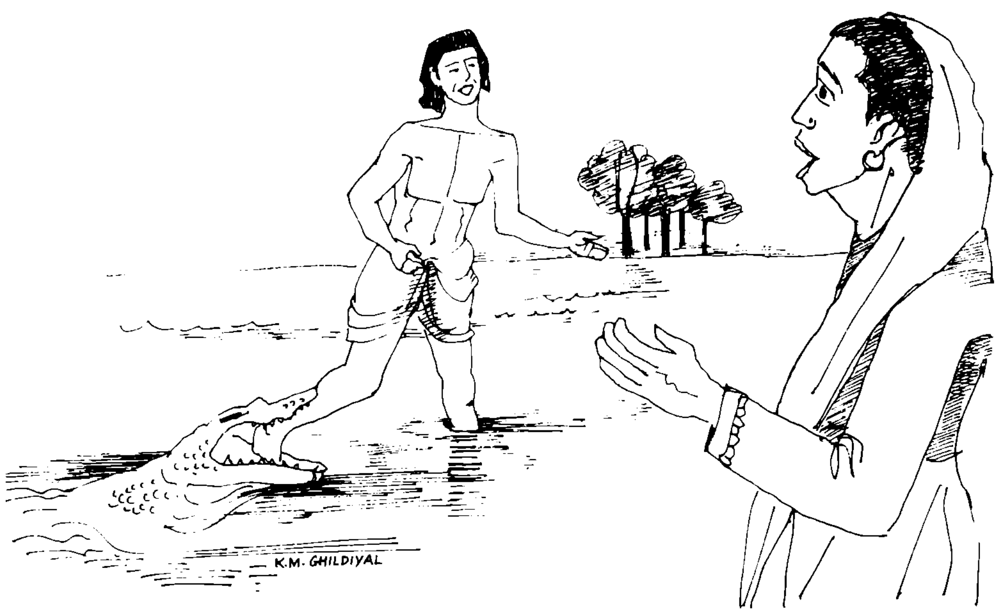
वह बोला, ''मैं अनपढ़ हूं। धरम-करम क्या होता है, नहीं जानता। हां कोई बीमार होता है तो सेवा कर देता हूं। कोई मांगता है तो अन्न दे देता हूं।''

राजा ने कहा, ''यही सबसे बड़ा धर्मात्मा है। सबसे बड़ा धर्म बिना किसी इच्छा के असहायों की सेवा करना है।''

मां, मैं संन्यासी बनूंगा

लगभग बारह सौ साल पहले की बात है। मालाबार में एक बहुत बड़े संत हुए। उनका नाम था शंकर। बचपन से ही उनमें वैराग्य की भावना थी। वे संन्यासी बनना चाहते थे, पर उनकी मां इसके लिए किसी भी हालत में राजी नहीं होती थी। मां की ममता जो ठहरी! वह चाहती थी कि उसका बेटा उसकी आंखों के सामने रहे और बुढ़ापे में उसे सहारा दे।

एक दिन शंकर अपनी मां के साथ नदी में नहाने गए। जैसे ही वह पानी में घुसे, एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। वे चिल्लाए, ''मां, मगर ने मेरा पैर पकड़ लिया है। मैं अब क्या करूं?''



मां को काटो तो खून नहीं! वह बेचारी क्या करे! उसने घबराकर लोगों को पुकारा। लोग आए, इससे पहले उसने सुना, लड़का कह रहा था, ''मां! ओ मां! मैं मर रहा हूं। कम-से-कम मुझे संन्यासी होकर तो मरने दो।''

मां कांप उठी। उसके अंदर तूफान उठ खड़ा हुआ। एक ओर बेटे की अंतिम इच्छा थी, दूसरी ओर मां की ममता। वह क्या करें? मौत के मुंह में पड़े बेटे की इच्छा को क्या पूरी न होने दे? पर सोचने का समय कहां था? उसने दिल कड़ा किया और झट उन्हें संन्यासी होने की अनुमति दे दी।

इसके बाद जिसकी आशा नहीं थी,वह हो गया। शंकर ने जोर लगाया और संयोग देखो कि उनका पैर मगर के चंगुल से छूट गया।

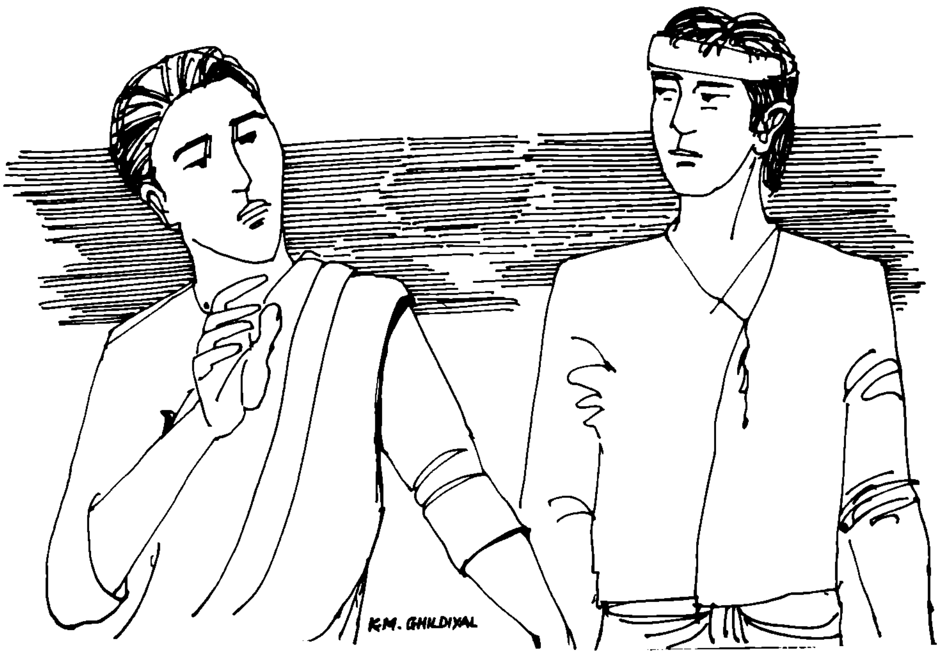
वह बाहर निकले। मां के जैसे खोये प्राण लौट आए। पर बेटे को संन्यासी होने की अनुमति मिल चुकी थी। मां के सामने अब कोई चारा न था।

यही शंकर आगे चलकर आदि शंकराचार्य बने, जिन्होंने सारे देश में धर्म का डंका बजाया और इतिहास में उनका नाम अमर हो गया।

रोना क्यों?

सूफी-सन्तों में राबिया का स्थान बहुत ऊंचा था। वह बड़ी सादगी का जीवन बिताती थीं और सबको बेहद प्यार करती थी। ईश्वर में उनकी अगाध श्रद्धा थी। अपना सबकुछ उन्हीं को सौंप रखा था।

एक दिन एक व्यक्ति राबिया के पास आया। उसके सिर पर पट्टी बंधी थी। राबिया ने पूछा, ''क्यों भाई, क्या बात है? यह पट्टी क्यों बांध रखी है?''



वह आदमी बोला, ''सिर में बड़ा दर्द है।''

राबिया ने पूछा, ''तुम्हारी कितनी उम्र है?''

उत्तर मिला, ''यही कोई तीसेक साल की है।''

''अच्छा यह बताओ'', राबिया ने आगे सवाल किया, ''इन तीस वर्षों में तुम तन्दुरुस्त रहे या बीमार रहे?''

उसने कहा "मैं तन्दुरुस्त रहा। कभी बीमार नहीं पड़ा।"

तब राबिया मुस्कराकर बोली, "भले आदमी, तुम इतने साल तंदुरुस्त रहे, पर तुमने एक दिन इसके शुकराने में पट्टी नहीं बांधी, और अब जरा सिर में दर्द हो गया तो शिकायत की पट्टी बांध ली।"

राबिया की बात सुनकर वह आदमी बहुत शर्मिंदा हुआ और सिर झुकाकर चला गया।

स्वामी का वात्सल्य

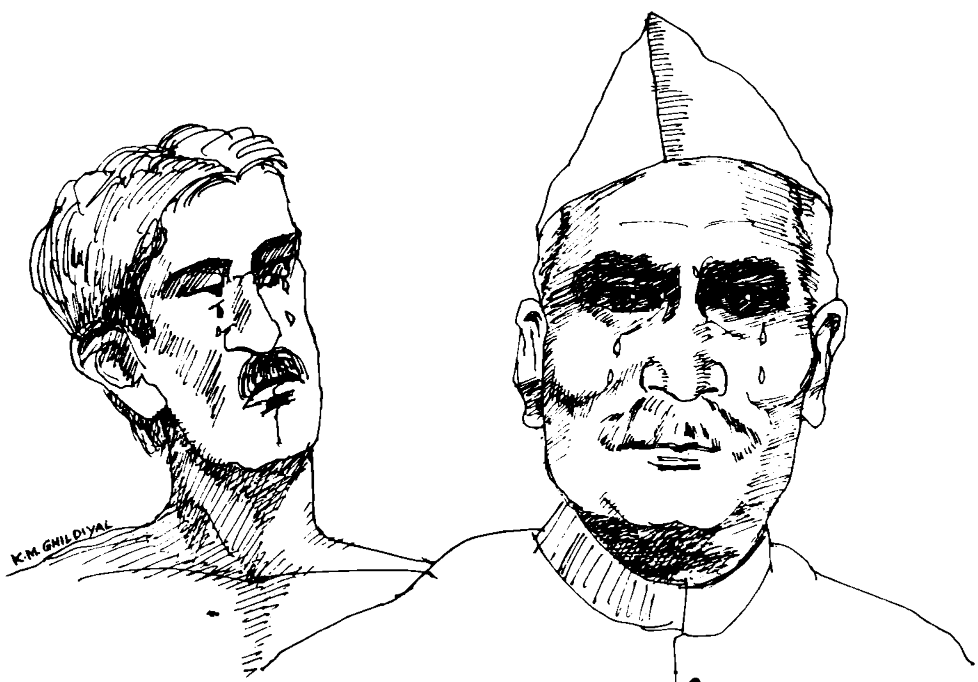
एक स्वामी थे। उनका एक बड़ा ही स्वामिभक्त सेवक था। एक दिन सेवक के हाथ से स्वामी का कलम छूटकर धरती पर गिर गया और टूट गया। स्वामी ने खीजकर कहा, ''यह तुमने क्या किया? यह कलम मुझे किसी ने बड़े प्रेम से दिया था।''

सेवक कुछ नहीं बोला। चुपचाप बाहर जाकर बरामदा साफ करने लगा। वह अपनी असावधानी से बड़ा दुखी था।

थोड़ी देर में स्वामी ने आवाज दी, ''इधर आओ।''

सेवक के आने पर स्वामी ने उसकी कलाई पकड़कर कहा, ''तुम हमारी कितनी सेवा करते हो! तुम्हारी सेवा के बिना मैं एक दिन भी नहीं जी सकता। लेकिन तुम्हारी जरा-सी भूल पर मैं इतना बिगड़ गया। तुम मुझे माफ कर दो।''

सेवक को काटो तो खून नहीं! स्वामी यह क्या कह रहे हैं! चकित होकर बोला, ''बाबू, हमने गल्ती की। आपका गुस्सा होना ठीक था।''



स्वामी की आंखों में आंसू भरे थे। उन्होंने अवरुद्ध कंठ से कहा, ''जबतक तुम हमको माफ़ नहीं कर दोगे, हम तुमको नहीं छोड़ेंगे।''

सेवक का दिल पहले से ही भरा था। स्वामी का इतना कहना था कि वह बच्चे की तरह रोने लगा। स्वामी ने उसकी कलाई और कसकर पकड़ ली। सेवक ने स्वामी की आंखों से आंसू पोंछे और सुबकते हुए बोला, ''बाबू, आप चुप हो जाइए। हमने आपको माफ़ कर दिया।''

यह स्वामी थे भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद और सेवक था सीताराम। कहने की आवश्यकता नहीं कि दोनों के बीच पिता और पुत्र जैसा संबंध था।

अनुपम देश भक्ति

बहुत वर्ष पहले की बात है। स्वामी विवेकानंद जापान गए थे। वहां एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा कर रहे थे। एक दिन वह रेल से कहीं जा रहे थे। रास्ते में उनकी फल खाने की इच्छा हुई। उन्होंने इधर-उधर बहुत खोज की, लेकिन फल कहीं भी नहीं मिले। आखिर निराश होकर उनके मुंह से निकला, ''यह जापान कैसा देश है कि जहां फल भी नहीं मिलते।''

उनके पास एक जापानी युवक बैठा था। उसके कानों में ये शब्द पड़े तो वह तिलमिला उठा।

उसे पता था कि फल कहां मिलते हैं। अगले स्टेशन पर वह उतरा और थोड़ी ही देर में जब लौटा तो उसके हाथ में फलों का लिफाफा था। बड़े प्रेम से उसने वे फल स्वामीजी के सामने रख दिए।

स्वामीजी ने मुस्कराकर उसे धन्यवाद दिया। फिर पूछा, ''इन फलों के दाम कितने हैं?''

युवक ने स्वामीजी की ओर देखा और देखता रहा। बोला कुछ नहीं।

स्वामीजी जानते थे कि वह उन्हें पैसे देकर ही लाया होगा। अतः उन्होंने अपनी बात को दोहराते हुए कहा, ''संकोच मत करो। साफ-साफ बता दो।''

युवक की आंखे छलछला आईं। बोला, ''स्वामीजी, इनका मूल्य...''

कहते-कहते उसकी वाणी रूक गई।

स्वामीजी ने कहा, ''हां-हां, रुक क्यों गए? बोलो।''

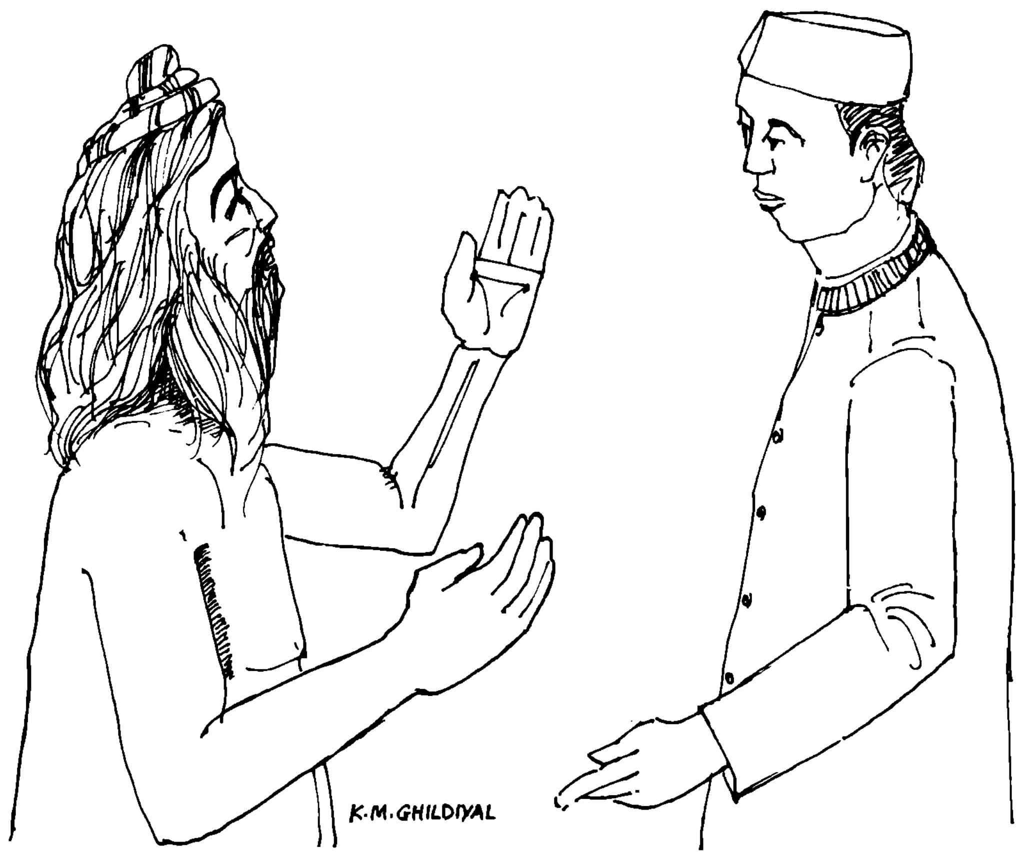
''इनका मूल्य,'' नौजवान ने धीमे स्वर में कहा, ''यह है कि आप अपने देश में जाकर यह न कहें कि मेरे देश जापान में फल नहीं मिलते।''

साधु का बोध

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके पास लाखों की सम्पत्ति थी, बहुत बड़ी हवेली थी, नौकर-चाकर थे। फिर भी सेठ को शांति नहीं थी।

एक दिन किसी ने उसे बताया कि अमुक नगर में एक साधु रहता है। वह लोगों को ऐसी सिद्धि प्राप्त करा देता है कि उससे मनचाही चीज मिल जाती है।

सेठ उस साधु के पास गया और प्रणाम करके निवेदन किया, "महाराज, मेरे पास पैसे की कमी नहीं है, पर मेरा मन बहुत अशांत रहता है। आप कुछ ऐसा उपाय कर दीजिए कि मेरी अशांति दूर हो जाए।"



सेठ ने सोचा कि साधु कोई ताबीज दे देंगे या और कुछ कर देंगे, जिससे उसकी इच्छा पूरी हो जाएगी। लेकिन साधु ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। अगले दिन उसने सेठ को धूप में बिठाए रखा और स्वयं अपनी कुटिया के अंदर छाया में चैन से बैठा रहा।

गर्मी के दिन थे। सेठ का बुरा हाल हो गया। गुस्सा आया, पर वह उसे चुपचाप पी गया।

दूसरे दिन साधु ने कहा, ''आज तुम्हें दिन-भर खाना नहीं मिलेगा।''

मारे भूख के दिन-भर सेठ के पेट में चूहे कूदते रहे, अन्न का एक दाना भी उसके मुंह में नहीं गया। लेकिन उसने देखा कि साधु ने तरह-तरह के पकवान उसी के सामने बड़े आनंद से खाए।

सेठ सारी रात हैरान रहा। उसे एक क्षण को भी नींद नहीं आई। सोचता रहा, साधु बड़ा स्वार्थी है।

तीसरे दिन सवेरे ही उठकर उसने अपना बिस्तर बांधा और चलने को तैयार हो गया। तभी साधु उसके सामने आकर खड़े हो गए। बोले, ''सेठ, क्या हुआ?''

सेठ ने कहा, ''मैं यहां बड़ी आशा लेकर आया था, लेकिन मुझे कुछ नहीं मिला, उल्टे ऐसी मुसीबत उठानी पड़ी, जैसी जीवन में मैंने कभी नहीं उठाई। मैं जा रहा हूं।''

साधु हंसे। बोले, ''मैंने तुझे इतना दिया, पर तूने कुछ नहीं लिया।''

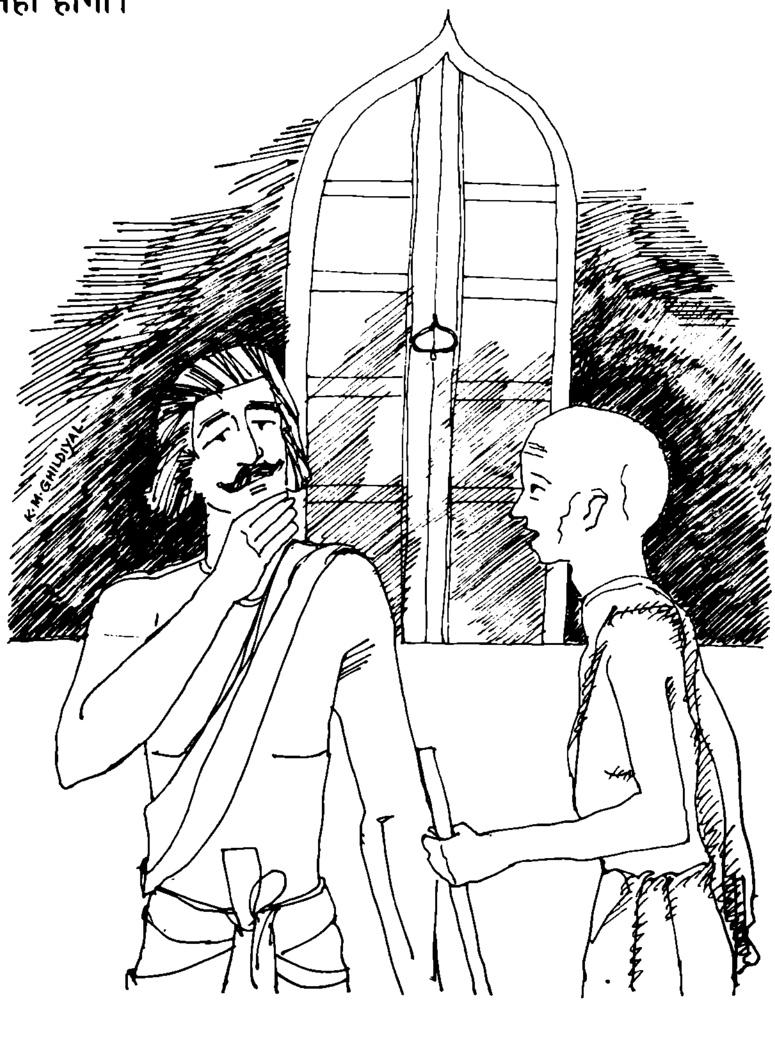
सेठ ने विस्मय से साधु की ओर देखा। बोला, ''आपने तो मुझे कुछ नहीं दिया।''

साधु ने कहा, ''सेठ, पहले दिन जब मैंने तुझे धूप में बिठाया और स्वयं छाया में बैठा, तो मैंने तुझे बताया कि मेरी छाया तेरे काम नहीं आ सकती। मेरी बात तेरी समझ में नहीं आई तो दूसरे दिन मैंने तुझे भूखा रखा और स्वयं खूब अच्छी तरह खाना खाया। उससे मैंने तुझे समझाया कि मेरे खा लेने से तेरा पेट नहीं भर सकता। सेठ, याद रख, मेरी साधना से तुझे सिद्धि नहीं मिलेगी। धन तूने अपने पुरुषार्थ से कमाया है। शांति भी तुझे अपने ही पुरुषार्थ से मिलेगी।''

सेठ की आंखें खुल गईं। अपनी मंजिल पर पहुंचने का उसे रास्ता मिल गया। साधु के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हुआ वह लौट आया।

वृद्ध की सीख

एक राजा था। उसे हर घड़ी इस बात का डर लगा रहता था कि कहीं कोई हमला करके उसे मार न डाले। वह सुरक्षा का उपाय सोचता, लेकिन कुछ भी उसकी समझ में न आता। आखिर एक दिन अचानक एक रास्ता उसे सूझा। एक ऐसा महल बनवाया जाए, जो चारों ओर से बंद हो। न उसमें रोशनदान हों, न जंगले, न उसमें दरवाजे हों, न खिड़कियां। बस एक दरवाजा हो। ऐसे महल पर किसी का भी हमला कारगर नहीं होगा।



इस विचार के आते ही राजा ने काम शुरू करा दिया और कुछ ही दिनों में मनचाहा महल बनकर तैयार हो गया।

जिसने भी उस महल को देखा, चकित रह गया। उसमें दुश्मन तो क्या, एक परिन्दा तक नहीं आ सकता था। सबने राजा की बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

राजा को पूरा भरोसा हो गया कि अब उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

संयोग से एक दिन एक वृद्ध आदमी उस महल को देखने आया। राजा ने बड़े उल्लास से उसे सारा महल दिखाया। लेकिन उस वृद्ध के चेहरे पर खुशी नहीं दिखाई दी। राजा ने पूछा, " कहो, महल कैसा लगा?"

वृद्ध ने गम्भीर होकर कहा, "राजन, महल तो अच्छा है, लेकिन आपने एक भूल की है।"

राजा ने विस्मय से पूछा, "क्या?"

वृद्ध ने कहा, "आपने एक दरवाजा रखा है। इस दरवाजे से दुश्मन तो नहीं आ सकता, लेकिन अगर मौत आ गई तो? इस दरवाजे को भी बंद करके आप भीतर बैठ गए होते, तो शायद पूरी तरह से बचत हो जाती।"

वृद्ध के कथन से राजा की आंखें खुल गईं। उसने समझ लिया कि बंद महल व्यर्थ है। वह दुश्मन से बच सकता है, मौत से नहीं, जिसके लिए दरवाजे की भी जरूरत नहीं है।

मूल्यवान भेंट

एक व्यापारी ने अपने व्यापार में खूब कमाई की। उसकी तिजोरियां भर गई। चारों ओर उसका नाम हो गया।

एक दिन उसने एक बहुत ही मूल्यवान वस्तु खरीदी और उसे ईसा को अर्पित करने चला।

पुलकित मन से वह ईसा के पास पहुंचा और अपनी भेंट आगे करके बोला, ''प्रभो, मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कीजिए।''

ईसा ने व्यापारी की ओर देखा, फिर उस वस्तु पर निगाह डाली और नीचे देखने लगे।



उनकी भाव-भंगिमा से व्यापारी का सारा उल्लास नष्ट हो गया। उसने विनम्र शब्दों में कहा, ''प्रभो, यह चीज बड़ी कीमती है। मैंने बड़ी कठिनाई से जुटाई है। आप इसे ग्रहण करके मुझे उपकृत कीजिए।''

ईसा ने दृष्टि ऊपर उठाकर कहा, ''मैं इस भेंट को नहीं ले सकता। तुमने इसे चोरी के पैसे से खरीदा है।''

व्यापारी को काटो तो खून नहीं। विस्मित होकर बोला, ''प्रभो, यह आप कैसे कहते हैं? मैंने तो इसे अपनी कमाई के पैसे से खरीदा है।''

ईसा ने कहा, ''तुम्हारा पड़ोसी भूखा और नंगा हो और तुम्हारी तिजोरी भरी हो, तो यह पैसा चोरी का नहीं तो और किसका हो सकता है? तुम अपनी इस भेंट को ले जाओ और इसे बेचकर जो पैसा प्राप्त हो, उसे भूखों को खाना और नंगों को कपड़ा देने में खर्च करो।''

व्यापारी ने अनुनय करते हुए कहा, ''प्रभो, मेरे पास अभी बहुत धन है। आप जो आदेश दे रहे हैं, मैं उसका पालन करूंगा, पर इस भेंट को तो आप ले ही लीजिए।''

लेकिन ईसा ने वह भेंट नहीं ली। बोले, ''जो जरूरतमंदों की सहायता करता है, वह मुझे सबसे कीमती भेंट देता है। इंसान की सेवा मेरी ही सेवा है।''

अंतर की ललकार

एक राक्षस था। उसने एक आदमी को अपनी चाकरी में रखा। आदमी बड़ा भला था। राक्षस जो भी कहता, वह फौरन कर देता। लेकिन राक्षस तो राक्षस ठहरा! उसे इतने से ही संतोष न होता। बात-बात पर आंखें फाड़कर कहता, "काम में जरा-भी ढील हुई तो मैं तुझे जिन्दा नहीं छोडूंगा।"

बेचारा आदमी मारे डर के सहम जाता। एक घड़ी भी चैन से न बैठ पाता। उसके अंदर आशंका बनी रहती कि कहीं वह दुष्ट उसे मार न डाले। पर वह करता क्या! राक्षस के चंगुल में बुरी तरह फंस गया था।



इसी प्रकार कुछ दिन निकल गए।

एक दिन काम करते-करते वह इतना थक गया कि हाथ हिलाना भी उसके लिए दूभर हो गया। लाचार होकर, वह सुस्ताने के लिए बैठ गया। राक्षस ने जैसे ही देखा कि चीख उठा, "तूने क्या समझ रखा है! मैं तुझे खा जाऊंगा।"

राक्षस की फटकार सुनकर वह डरता, इससे पहले ही उसके अंदर की आत्मा अचानक बड़े जोर से ललकार उठी, ''मूर्ख, तू आदमी है। गीदड़ क्यों बन गया है! याद रख, जबतक तू दब्बू बना रहेगा, यह राक्षस शेर बनकर तेरे ऊपर सवार रहेगा।''

इस ललकार को सुनते ही उस आदमी का सोता पौरुष जाग उठा। उसने कठोर आवाज में कहा, ''तू धमकाता किसे है? खाना है तो आ, ले खा ले।''

राक्षस ने उसकी आवाज से समझ लिया कि अब धमकी देकर उसे दबाए रखना संभव नहीं है और अगर वह उसे खा भी डालेगा तो उस जैसा दूसरा आदमी उसको कहां मिलेगा!

उस दिन से राक्षस का सारा व्यवहार बदल गया। खाने की बात फिर उसने कभी अपने मुंह से नहीं निकाली।

शांति का मार्ग

एक व्यापारी था। उसने व्यापार में खूब कमाई की। बड़े-बड़े मकान बनाए, नौकर-चाकर रखे, लेकिन भाग्य की बात कि उसके दिन फिर गए। व्यापार में घाटा आया और वह एक-एक पैसे के लिए मोहताज हो गया। जब उसकी हैरानी सहन से बाहर हो गई तो वह एक साधु के पास गया और उन्हें सारा हाल कह सुनाया। अंत में रोते हुए बोला, ''महाराज, मुझे कोई रास्ता बताइए, जिससे शांति मिले।''

साधु ने पूछा, ''तुम्हारा सबकुछ चला गया?''

व्यापारी ने कहा, ''जी हां।''

साधु बोले, ''तुम्हारा था तो उसे तुम्हारे पास रहना चाहिए था। वह चला कैसे गया?''

व्यापारी चुप।

''जन्म के समय तुम अपने साथ कितना धन लाए थे?''

''स्वामीजी, जन्म के समय तो सब खाली हाथ आते हैं।''



साधु बोले, ''ठीक, अब यह बताओ कि मरते समय अपने साथ कितना ले जाना चाहते हो?''

''मरते समय साथ कौन ले जाता है, जो मैं ले जाऊंगा!''

साधु बोले, ''जब तुम खाली हाथ आए थे और खाली हाथ जाओगे तो फिर चिन्ता किस बात की करते हो?''

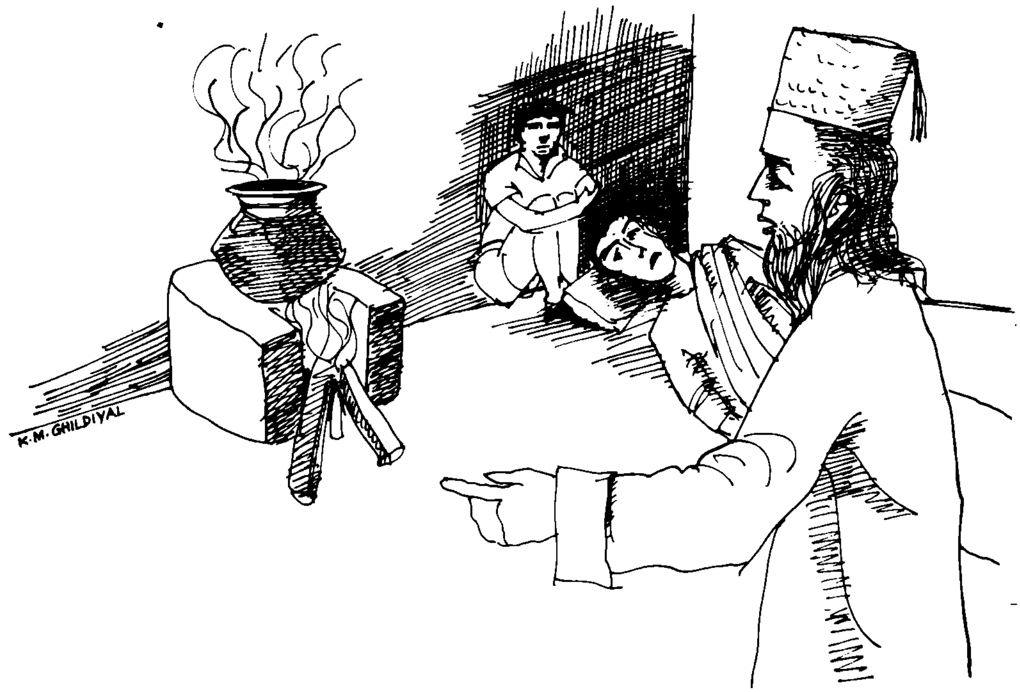
व्यापारी ने कहा, ''महाराज, जबतक मौत नहीं आती, तबतक तक मेरी और मेरे घरवालों की गुजर-बसर कैसे होगी?''

साधु हंस पड़े। बोले, ''जो धन पर भरोसा रखेगा, उसका यही हाल होगा। तुम्हारे हाथ-पैर तो हैं। उन्हें काम में लाओ। पुरुषार्थ सबसे बड़ा धन है। ईश्वर का भरोसा सबसे बड़ा भरोसा है। पुरुषार्थ करो, भरोसा ईश्वर का रखो। शांति का यही एकमात्र रास्ता है।''

व्यापारी की आंखें खुल गईं। उसका मन शांत हो गया। जाने कितने वर्षों के बाद पहली बार रात को उसे चैन की नींद आई। उसके शेष वर्ष बड़े आंनद में बीते।

कर्तव्य

हजरत उमर वेश बदलकर लोगों के बीच घूमा करते थे। देखते थे किसी को कोई कष्ट तो नहीं है। एक बार वह किसी झोपड़ी के पास से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा, एक स्त्री फर्श पर बीमार पड़ी है। चूल्हे पर हांडी चढ़ी है, पर बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। उन्होंने स्त्री के नजदीक जाकर पूछा, "तुम बच्चों को खाने को क्यों नहीं देती?"



स्त्री ने उनकी ओर देखा और बोली, "इन्हें खिलाने को मेरे पास है क्या?"

"इस हांड़ी में क्या पक रहा है?"

"मुझसे क्या पूछते हो? अपने-आप क्यों नहीं देख लेते।"

हजरत उमर ने देखा-- उसमें खाली पानी उबल रहा था। स्त्री ने बच्चों को बहलाने के लिए यह तदबीर की थी।

उमर ने कहा, "तुम्हारे पास कुछ नहीं था, तो तुम खलीफा के पास क्यों नहीं गईं?"

स्त्री तेज होकर बोली, "क्या खलीफा का यह फर्ज नहीं कि इसकी जानकारी रखें?"

हजरत उमर ने सहमकर कहा, "खलीफा के राज्य में इतने लोग हैं। वह आखिर हर किसी की देखभाल कैसे कर सकते हैं?"

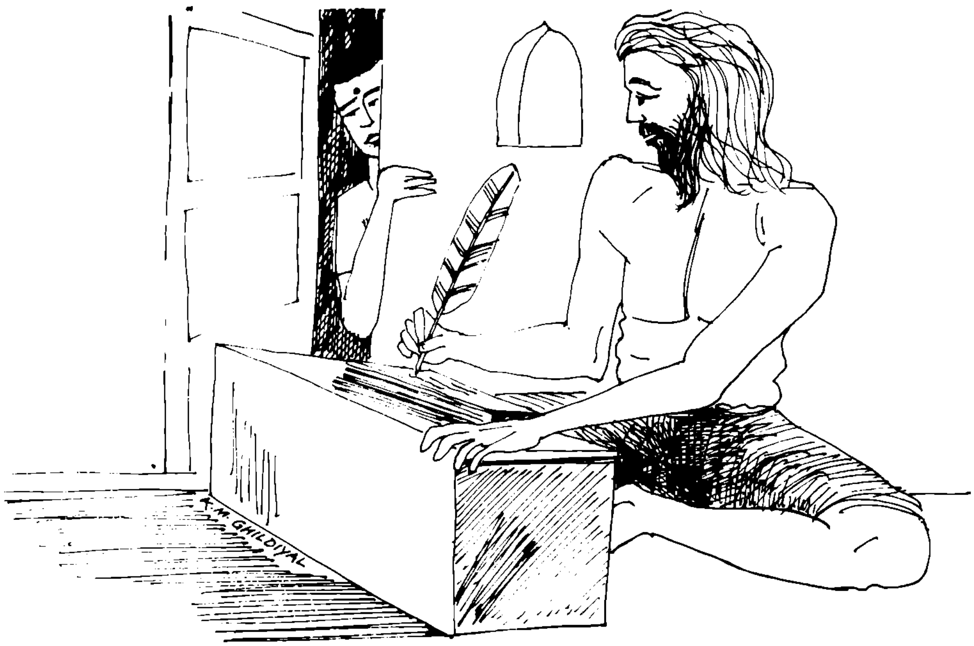
स्त्री के चेहरे पर तनाव आ गया। बोली, "अगर खलीफा मेरे पति को लड़ाई पर भेज सकते हैं तो क्या उन्हें उसके बाद उसके स्त्री-बच्चों के खाने-पीने का इंतजाम खुद नहीं करना चाहिए?"

बात उसकी सही थी। उमर ने फौरन शाही भंडार से खाने का सामान मंगवाया, सबको खिलाया और आगे का सारा इंतजाम भी कर दिया।

दुर्लभ साधना

एक दार्शनिक थे। उनका विवाह हुआ और अगले दिन से ही वह एक ग्रंथ की रचना में लग गए। उस काम में वह ऐसे खो गए कि उनको ध्यान ही न रहा कि उनका विवाह हो चुका है और कोई तरुणी उनके जीवन के साथ बंधी हुई है।

सौभाग्य से पत्नी बड़ी भली थी, बड़ी समझदार थी। उसने देखा कि पति किसी कार्य में संलग्न हैं तो उसने उनके ध्यान या एकाग्रता को भंग करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इतना ही नहीं, वह उनकी सब प्रकार से सहायता करती रही। भोजन के समय वह उन्हें खाना खिला देती, शाम को उनके कमरे में दीपक जला देती। और भी जो काम होता, चुपचाप कर देती।



दिन बीतते गए। एक-एक करके बारह वर्ष निकल गए। पति अपनी साधना में तल्लीन रहा, पत्नी अपने कर्तव्य का पालन करती रही।

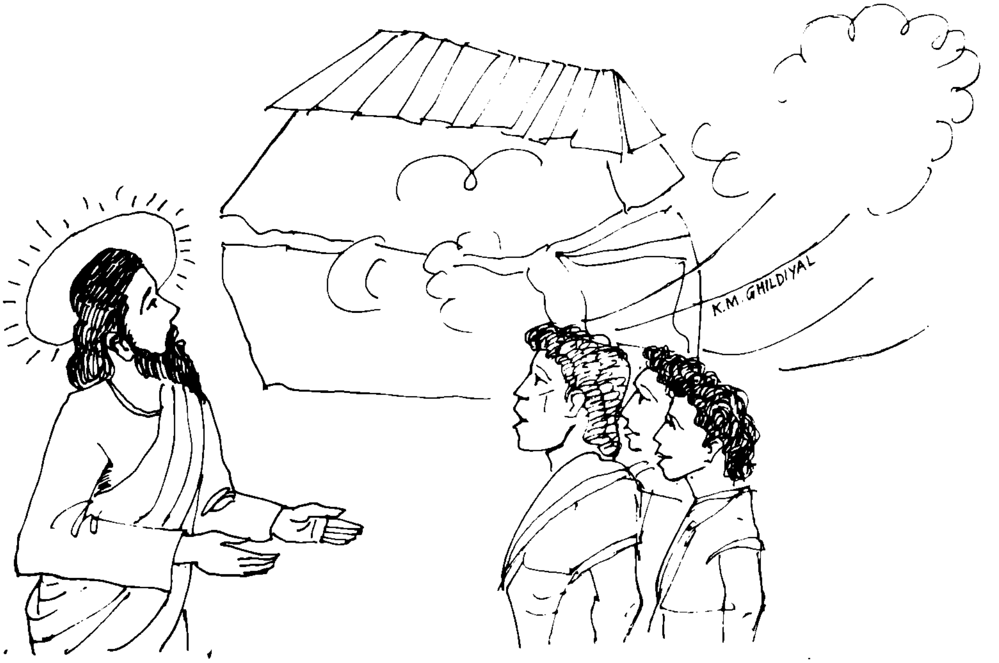
आखिर ग्रंथ पूरा हुआ। उस दिन जब पत्नी दीपक जलाने आई तो दार्शनिक का ध्यान उसकी ओर गया, उसने उसे ऐसे देखा, जैसे किसी अजनबी को देख रहा हो। फिर एकदम पहचानकर बोला, ''अरे, तुम?''

पत्नी ने कहा, ''मैं आज नई थोड़ी आई हूं! बारह साल से रोज आपके सामने आती रही हूं।''

उस पति-परायण नारी के सम्मुख दार्शनिक का सिर श्रद्धा से झुक गया। उसकी आंखें डबडबा आईं। बोला, ''मैंने जो कुछ किया सो किया, किन्तु असली साधना तो तुमने की है। बिना तुम्हारी साधना के मैं अपने उद्देश्य में कदापि सफल नहीं हो सकता था।''

यह दार्शनिक थे विख्यात तत्ववेत्ता वाचस्पति मिश्र और बारह वर्ष में जो ग्रंथ पूरा हुआ, वह था 'शंकर भाष्य' की टीका।

कथनी और करनी



प्रभु ईसा का जीवन बड़े ऊंचे दर्जे का था। उसमें सादगी, प्रेम, करुणा, क्षमा, विनय, सेवा आदि गुण बहुत बड़ी मात्रा में थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं था।

वह अपने पास आनेवाले लोगों से कहा करते थे, "मैं जो कुछ कहता हूं, उसे सुनो और अपने जीवन में उतारो।"

इसी बात को एक बार उन्होंने एक बड़ा ही सरल पर प्रेरक दृष्टांत देकर समझाया:

एक आदमी था। उसने अपना घर चट्टान के ऊपर बनवाया। बड़े जोर का पानी बरसा, आंधियां चलीं, उसके घर से टकराईं, लेकिन उस घर का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकीं।

एक दूसरा आदमी था, जिसने अपना घर बालू पर बनवाया। आया मेह, चलीं आंधियां और वह घर ढहकर मिट्टी में मिल गया।

ईसा ने कहा, "जो मेरी बातें सुनता है और उन पर चलता है, वह उस समझदार आदमी की तरह है, जो चट्टान पर अपना घर बनवाता है। लेकिन जो आदमी मेरी बातें सुनता तो है, पर उन पर अमल नहीं करता, वह उस मूर्ख की तरह है, जो बालू पर अपना घर बनवाता है। जरा-सा पानी पड़ता है, आंधी आती है कि घर ढह जाता है।"

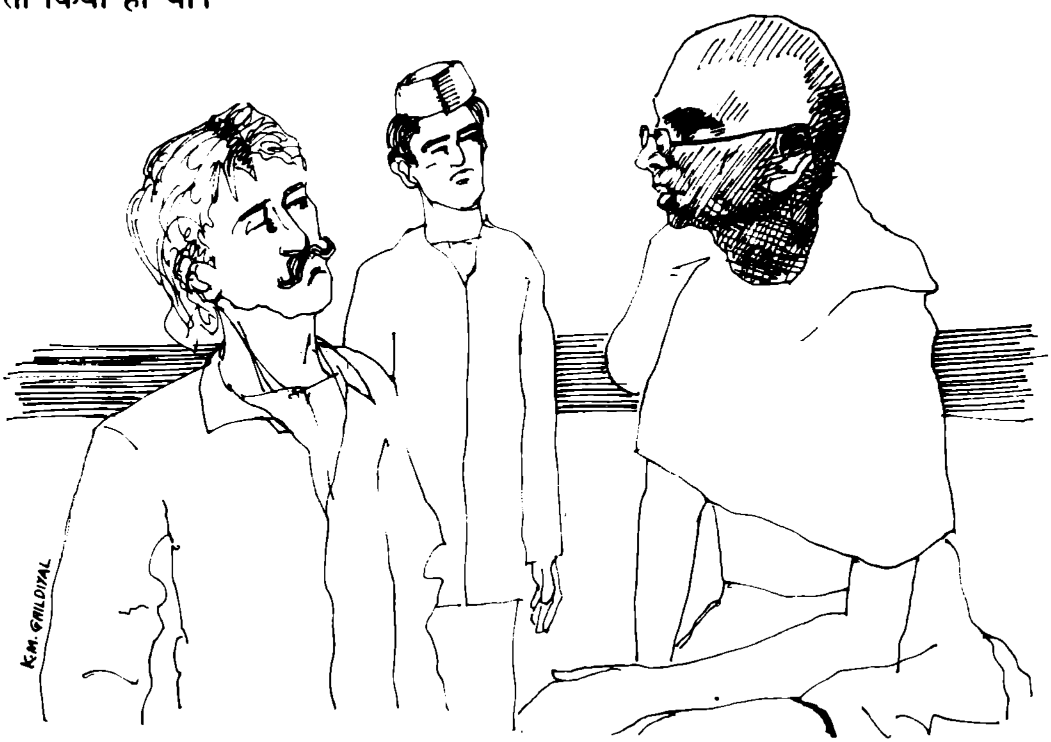
करुणा और प्रेम

साबरमती आश्रम की बात है। एक दिन रात को एक चोर आ गया। चोर नासमझ था, नहीं तो आश्रम में चुराने के लिए भला क्या था!''

संयोग से कोई आश्रमवासी जग गया। उसने धीरे-से कुछ और लोगों को जगा दिया। सबने मिलकर चोर को पकड़ लिया और कोठरी में बंद कर दिया। बापू सो रहे थे। सोते रहे।

अगले दिन आश्रम में इस घटना की चारों ओर चर्चा हो गई कि रात को चोर आ गया था और उसे पकड़कर कोठरी में बंद कर दिया गया है। सब उत्सुक थे कि देखें, आगे क्या होता है!''

व्यवस्थापक ने यह खबर बापू को दी और चोर को उनके सामने पेश किया। बापू ने निगाह उठाकर उसकी ओर देखा। वह नौजवान सिर झुकाए आतंकित खड़ा था कि बापू उससे नाराज होंगे और हो सकता है कि पुलिस को सौंप दें। आखिर उसने अपराध तो किया ही था।



लेकिन बापू ने जो किया, उसकी तो वह स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था। बापू ने उससे पूछा, ''क्यों, तुमने नाश्ता किया?''

कोई उत्तर न मिलने पर उन्होंने व्यवस्थापक की ओर प्रश्न-भरी मुद्रा में देखा। व्यवस्थापक ने कहा, ''बापू! यह तो चोर है! नाश्ते का सवाल ही कहां उठता है!''

बापू का चेहरा गम्भीर हो आया। दुख भरे स्वर में बोले, ''क्यों, क्या यह इंसान नहीं है? इसे ले जाओ और नाश्ता कराओ।''

व्यवस्थापक, जिसे चोर मानकर लाये थे, वह अब एक क्षण में इंसान बन गया था। उसकी आंखों से प्रार्याश्चत के आंसू बह रहे थे।

धर्म-ग्रंथों में हम पढ़ते हैं कि करुणा ने बुद्ध को बुद्ध बनाया, प्रेम ने महावीर को महावीर बनाया, किन्तु हमने अपने युग में देखा कि करुणा और प्रेम ने गांधी को बापू बना दिया।

महानता का रहस्य

नेपोलियन बहुत बड़ा सम्राट हुआ है। वह बड़ा पराक्रमी थी। बड़ा योद्धा था। उसने बहुत-सी लड़ाईयां लड़ीं और उनमें जीता।

पराक्रमी होने के अतिरिक्त नेपोलियन में बहुत-से गुण थे। नींद पर उसका इतना अधिकार था कि घोड़े की पीठ पर बैठा-बैठा वह घंटों सो लेता। उसके साथ कोई कुछ भलाई कर देता, तो वह उसे कभी भूलता नहीं था। जिन दिनों वह स्कूल में पढ़ता था, उसे फल खाने का शौक था। कभी-कभी उसके पास पैसे नहीं होते थे तो एक फलवाली भलीमानस बुढ़िया उसे फल उधार दे देती थी। नेपोलियन की पढ़ाई पूरी हो जाने पर वह शहर छोड़ कर चला गया। बुढ़िया के कुछ पैसे देने को रह गये। सम्राट हो जाने के बाद नेपोलियन एक दिन उस शहर में गया और बुढ़िया की दुकान पर जाकर न केवल उसके पैसे चुकाए, उसके लड़के को सैनिक स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया।



आखिर नेपोलियन वाटर लू की लड़ाई में पराजित हो गया। उसे सेंट एल्बा में बंदी बनाकर रखा गया।

नेपोलियन को टहलने की आदत थी। एक दिन शाम को वह टहलने निकला। उसकी परिचारिका साथ थी। थोड़ा आगे जाने पर परिचारिका ने देखा, सामने से एक वृद्धा अपने सिर पर कुछ सामान रखे चली आ रही है। पगडंडी संकरी थी। उसने बढ़कर वृद्धा से कहा, ''सम्राट आ रहा है। एक तरफ हो जाओ।''

नेपोलियन ने यह सुना तो बोला, ''मदाम, बूढ़े और बोझ से दबे व्यक्ति का आदर करो।''

इतना कहकर वह स्वयं पगडंडी के एक ओर खड़ा हो गया और बुढ़िया को रास्ता दे दिया।

बिना बड़े हृदय के कोई महान नहीं बन सकता।

कोई बेगाना नहीं

हजरत खलील बड़े दयालु और दानी थे। वह जबतक किसी मेहमान को खाना नहीं खिला देते थे, तबतक स्वयं कुछ नहीं खाते थे। एक बार कई दिन तक कोई भी आदमी उनके मेहमान-घर में नहीं आया। वह बड़े परेशान हुए और किसी मेहमान को ढूंढ़ने निकले। थोड़ी कोशिश के बाद उन्हें एक दुबला-पतला बूढ़ा मिल गया। बड़े प्रेम से वह उसे घर ले आए। उसे आदर से मेहमान-घर में बिठाया और नौकरों से खाना लाने को कहा।

खाने की थाली आ गई, लेकिन उस बूढ़े ने खाने से पहले खुदा का नाम नहीं लिया।

हजरत खलील ने कहा, ''बड़े मियां, यह क्या! आपने खुदा का नाम भी नहीं लिया।''

बूढ़ा बोला, ''मैं आग का पूजने वाला हूं। मेरे गुरु ने मुझे ऐसा करना नहीं सिखाया।''



यह सुनकर खलील को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने उस बूढ़े को बुरा-भला कहा और बेइज्जत करके उसे घर से निकाल दिया।

बूढ़ा चला गया। तभी खलील को खुदा के यहां से आवाज सुनाई दी, ''खलील, तूने यह क्या किया? मैंने इस बूढ़े को सौ बरस जिन्दगी और खाना दिया और तू उसे जरा-सी देर भी नहीं निभा सका। ठीक है कि वह आग की पूजा करता था, पर वह इंसान तो था। लोगों के यकीन अलग हो सकते हैं, लेकिन इंसानियत के लिए कभी कोई बेगाना नहीं होता। खलील, तुझे अपनी मोहब्बत का हाथ नहीं खींचना चाहिए था।''

हजरत खलील को अपनी भूल का अहसास हुआ और उन्होंने अहद किया कि आइंदा कभी ऐसा नहीं करेंगे।

सब पर दया

अल्बर्ट श्वाइट्ज़र जीव-दया के महान पुजारी थे। वह मुनष्यों पर ही नहीं, सारे जीवों पर दया रखते थे।

एक बार वह अपने मित्र के साथ कहीं जा रहे थे। वहां सवारी नहीं थी और स्टेशन कुछ दूर था। उन्होंने एक लाठी पर अपना सामान लटकाया और दोनों मित्र लाठी के एक-एक सिरे को अपने कंधे पर रखकर स्टेशन की ओर चल पड़े।

गाड़ी आने में थोड़ा ही समय रह गया था। इसलिए दोनों मित्र बड़ी तेजी से बढ़े जा रहे थे। आगे मित्र थे, पीछे वह।

जब स्टेशन थोड़ी ही दूर रह गया तो उन्होंने और तेजी से कदम बढ़ाया।

अकस्मात मित्र को बड़े जोर का धक्का लगा और पूरा सामान, जो लाठी के बीच में रखा था, खिसककर करीब-करीब उनके सिर पर आ गया। वह गिरते-गिरते बचे।

उन्होंने घबराकर श्वाइट्ज़र से पूछा, "क्यों भाई, क्या बात है?"

श्वाइट्ज़र बोले, "आप मुझे माफ करें। लेकिन यह देखिए, रास्ते में एक कीड़ा पड़ा है। किसी के भी पैर के नीचे दबकर मर सकता है। इसी को बचाने के लिए मैं एक ओर को हुआ तो मेरा संतुलन बिगड़ गया और सारा बोझ आप पर आ पड़ा। जरा रुक जाएं, मैं अभी इस कीड़े को उठाकर एक ओर रखे देता हूं।"

इतना कहकर उन्होंने एक लकड़ी लेकर कीड़े को उस पर चढ़ाया और बड़ी ममता से उठाकर उसे ऐसी जगह रख दिया, जहां किसी का भी पैर नहीं पड़ सकता था।

उसके बाद दोनों ने दौड़कर रास्ता पार किया, तब कहीं उन्हें गाड़ी मिली।

सच्चाई का ज्ञान

एक राजा था। वह बड़ा ही प्रजावत्सल था। उसके राज्य में कोई भूखा न रहे, इसके लिए अन्न पैदा करवाता, सबके सिर पर छत हो, इसलिए घर बनवाता, सबके तन पर कपड़ा हो, इसलिए वस्त्रों का उत्पादन करवाता, बीमारी-हारी में सबका उपचार हो, इसके लिए चिकित्सालय खुलवाता। कहने का मतलब यह कि वह हर तरह से प्रजा की सुख-सुविधा का ध्यान रखता।



फिर भी लोगों को पूरा संतोष नहीं था। उनकी मांगें बराबर बनी रहतीं। एक मांग पूरी होती कि दूसरी उठ खड़ी होती। राजा जी-जान से कोशिश करता कि वह उन मांगों को पूरा कर दे, किन्तु यह कैसे हो सकता था? लोगों की इच्छाओं का अंत न था। और राजा के साधन सीमित थे।

राजा में अपार धैर्य था, पर वह कब तक काम आता। उसकी हैरानी बढ़ती गई और अंत में वह बीमार पड़ गया। उसका अच्छे-से-अच्छा उपचार कराया गया, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। शरीर का रोग दूर किया जा सकता था, पर राजा की बीमारी तो कुछ और ही थी।

संयोग से एक दिन एक साधु उधर आ निकले। राजा की बीमारी का हाल सुनकर वह उनसे मिलने गए। देखा, राजा की दशा बड़ी बुरी हो रही है। राजा ने उन्हें अपना कष्ट बताया और विह्वल स्वर में कहा, "महाराज, मेरा दुख दूर कीजिए।"

साधु कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, "राजन! तुम्हारे दुख का कारण तुम स्वयं हो। तुम्हारे सोचने में एक बड़ी भूल है। इच्छाएं कभी पूरी नहीं की जा सकतीं। मन चंचल है। उसे जितना दो, उतना ही और मांगता है। इच्छाएं अमरबेल की तरह हैं। वे फैलती ही जाती हैं। सुख इच्छाओं को पूरा करने में नहीं है, उनके नियंत्रण में हैं।"

साधु की बात सुनकर राजा को सच्चाई का ज्ञान हुआ। उसने अपनी भूल को सुधारा। वह स्वस्थ हुआ। उसकी प्रजा सुखी हुई।

अपने को जानना

किसी नगर में एक सेठ रहता था। उसके तीन लड़के थे। सेठ ने उन्हें ज्ञान प्राप्त करने के लिए बाहर भेजा। अध्ययन करके बहुत दिनों बाद वे घर लौटे। सेठ ने सोचा कि इनकी परीक्षा लेनी चाहिए कि ये क्या सीखकर आए हैं। उसने सबसे पहले बड़े लड़के से पूछा, ''तुम क्या पढ़कर आए हो?''

उसने कहा, ''आत्म-विद्या।''

सेठ ने सवाल किया, ''आत्म-विद्या का रहस्य क्या है?''

लड़के ने वेद और उपनिषदों के मंत्र सुनाकर आत्म-विद्या का रहस्य समझाने का प्रयत्न किया।

फिर सेठ ने दूसरे लड़के से वही सवाल किया। उसने संत-महात्माओं के अनुभव सुनाए, उनकी शिक्षाएं बताईं और अंत में कहा, ''उनका सारा जीवन ही आत्म-विद्या से भरा है।''



अब सबसे छोटे लड़के की बारी आई। सेठ ने उससे पूछा, ''तुमने क्या अर्जन किया है।''

वह लड़का चुप रहा। सेठ ने अपना प्रश्न दोहराया। लड़का फिर भी चुप रहा। तब सेठ ने कहा, ''अरे बोलते क्यों नहीं हो? आखिर इतने दिन में तुमने भी कुछ-न-कुछ सीखा ही होगा?''

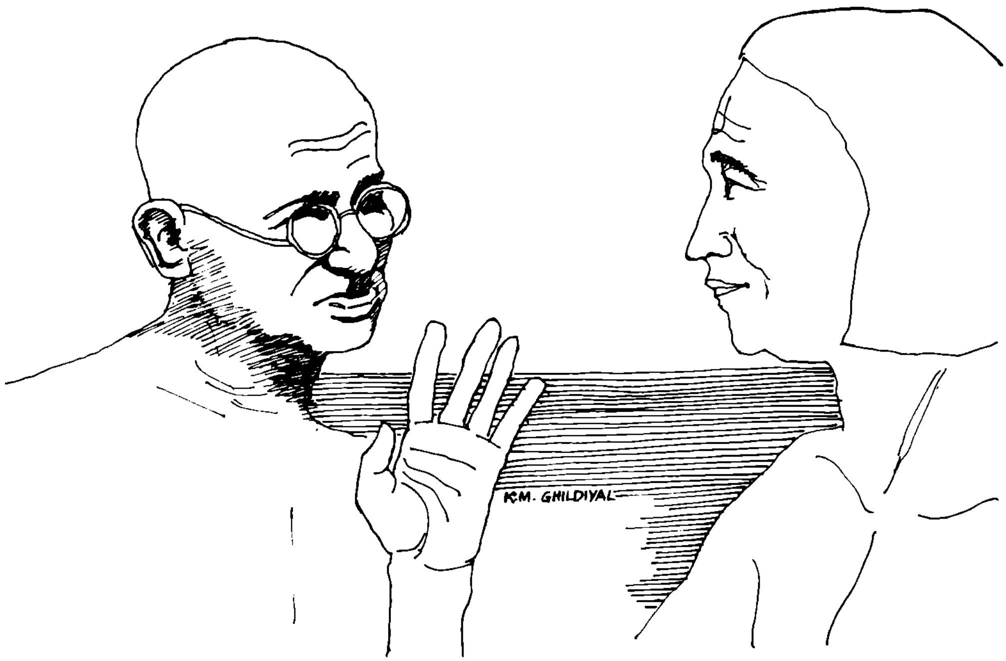
लड़के ने मुंह खोला। धीरे से बोला, ''पिताजी, मैंने जो आत्म-ज्ञान पाया है, उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। सच्चा आत्म-ज्ञान वह होता है, जो जीवन में जिया जाता है। अपने को जानने के लिए भीतर देखना होता है। शब्द वहां काम नहीं आते।''

सेठ ने उसकी पीठ थपथपाई और उसे सीने से लगाकर कहा, ''तुम ठीक कहते हो। सच्चे ज्ञान का मतलब ही है अपने को जानना।''

हिंसा की भूख

एक बार संत तुकड़ोजी गांधीजी के आश्रम में एक महीने के लिए रहने आए। गांधीजी ने उन्हें अपने पास ही ठहराया। वह उनके कीर्तन में सम्मिलित होते और उनसे विचार-विनिमय करते।

एक दिन गांधीजी ने उन्हें अपनी बात समझाने के लिए एक कहानी सुनाई। एक गरीब आदमी था और एक पैसेवाला आदमी था। दोनों के घर आसपास थे। एक दिन गरीब के घर में चोर आ गए। गरीब की आंखें खुल गई। उसने देखा कि चोर इधर-उधर परेशान होकर चीजें खोज रहे हैं। वह उठा और बोला, ''आप क्यों हैरान होते हैं? मेरे पास जो कुछ है, वह मैं अपने आप लाकर दिए देता हूं।'' इतना कहकर उसके पास जो दस-पांच रुपये थे, वे उनके हवाले कर दिए।



चोरों ने उस आदमी की ओर अचरज से देखा और रुपये लेकर चलते बने। पर उतने से उनका मन नहीं भरा। लोभ दूर नहीं हुआ। वे धनी आदमी के यहाँ पहुंचे। वह पहले से ही जाग रहा था। उसने उनकी बातें सुन ली थीं। सोचा, ''जब गरीब ऐसा कर

सकता है तो वह क्यों नहीं कर सकता?" उसने चोरों से कहा, "आप लोग बैठो। मेरे पास जो कुछ है, वह मैं तुम्हें दिये देता हू." फिर उसने अपनी जमा-पूंजी लाकर उनको सौंप दी।

चोरों को काटो तो खून नहीं। उनके अंदर राम जाग उठा। अमीर-गरीब का सारा माल छोड़कर वे चले गए और अपना धंधा त्याग कर साधु बन गए।

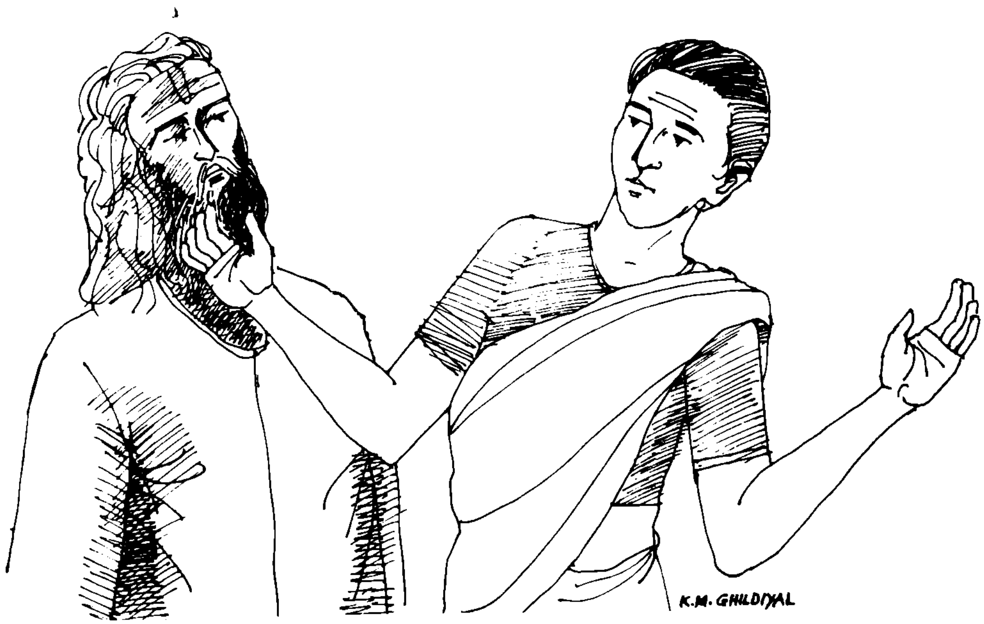
यह कहानी सुनाकर गांधीजी ने कहा, "मैं हिंसा के मुख में अहिंसा को इसी तरह झोंक देना चाहता हूं। आखिर कभी तो हिंसा की भूख शांत होगी। अगर दुनिया को शांति से जीना है तो मेरी जानकारी में इसका दूसरा और कोई रास्ता नहीं है।"

संत की महिमा

सूफी-संतों में एक बहुत बड़ी संत थीं। उनका नाम था राबिया। वह निहायत सादगी की ज़िन्दगी बिताती थीं और हर घड़ी 'अल्लाह' का नाम उनकी ज़बान पर रहता था। उनकी कुटिया में साधु-संतो और भक्तों का आना-जाना लगा रहता था।

एक दिन एक संत आया और रात को उनकी कुटिया में ही रह गया। उसने देखा, राबिया ने रात को अपने सोने के लिए एक टाट बिछाया और तकिये की जगह एक ईंट रख ली। 'अल्लाह' का नाम लेती हुई फिर वह उस बिस्तर पर आराम से लेट गईं और जरा-सी देर में गहरी नींद में सो गईं।

संत चकित रह गया। इतने ऊंचे दर्जे की संत और इतनी कठोर जिन्दगी! उसे बड़ा दुख हुआ और वह रात-भर अपने बिस्तर पर पड़ा छटपटाता रहा। एक पल को भी उसकी आंख नहीं लगी।



सवेरे उठकर उसने राबिया से कहा, ''आप इतनी तकलीफ क्यों उठाती हैं?''

''कैसी तकलीफ?'' राबिया ने पूछा।

रात को संत ने जो देखा था, वह बता दिया। फिर बोला, ''सुनिए मेरे कई अमीर दोस्त हैं। अगर आपकी इजाजत हो तो मैं उनसे कहकर आपके लिए एक अच्छा-सा बिस्तर भिजवा दूं?''

राबिया उसकी बात सुनकर थोड़ी देर चुप रहीं, फिर बोली, ''तुम्हारी मोहब्बत के लिए क्या कहूं! पर यह तो बताओ कि क्या मुझे, तुम्हें और अमीरों को देनेवाला एक ही नहीं हैं?''

संत ने दबी जबान से कहा, ''जी हां, एक ही हैं।''

तब राबिया बोली, ''क्या वह हमें भूल गया है और दौलतमंदों की उसे याद है? अगर उसे हमारी याद नहीं तो हम याद क्यों दिलाएं?''

घड़ी भर खामोश रहकर उन्होंने कहा, ''मेरे भाई, हमें यह हाल पसंद है, क्योंकि उसे यह पसंद है।''

बेचारा संत आगे एक शब्द भी न बोल सका।

PUBLICATIONS DIVISION
50
1942 1992

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार